गुजरात राज्य और अन्य

बनाम

लाल सिंह @मंजीत सिंह और अन्य

(2016 की आपराधिक अपील संख्या 171)

29 जून, 2016

[दीपक मिश्रा और शिवा कीर्ति सिंह, न्यायाधिपतिगण]

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 धारा 432 और 433 के तहत छूट-प्रतिवादी को गुजरात राज्य में नामित न्यायालय द्वारा टाडा प्रावधानों के तहत दोषी ठहराया गया था और आजीवन कारावास की सजादी गई-सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि की पुष्टि की गई - प्रतिवादी-दोषी के अनुरोध पर, उसे गुजरात की जेल से पंजाब की जेल में स्थानांतरित कर दिया गया- दोषी द्वारा सजा में छूट के लिए आवेदन - गुजरात राज्य द्वारा खारिज - इनकार के आदेश को चुनौती देने वाली रिट याचिका - उच्च न्यायालय ने गुजरात राज्य को दोषी को समय से पहले रिहा करने के लिए उसके प्रतिनिधित्व पर पुनर्विचार करने का निर्देश दिया-अपील पर, कहा गयाः उच्च न्यायालय ने यह नहीं पाया है कि राज्य द्वारा पारित आदेश अप्रमाणिक था आवश्यक तथ्यों पर उचित विचार करना या समानता के मूल सिद्धांतों का उल्लंघन था - इसलिए, उच्च न्यायालय को राज्य द्वारा छूट के मामले पर पुनर्विचार का निर्देश सही नहीं है-हालाँकि, धारा 432 और 433 के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करने के लिए उपयुक्त सरकार गुजरात राज्य नहीं होगा, बल्कि केंद्र सरकार होगी क्योंकि सजा एक कानून के तहत लगाई गई थी, जिसके संबंध में संघ की कार्यकारी शक्ति विस्तारित होती है-केंद्र सरकार के शक्तियुक्त प्राधिकरण के समक्ष समय से पहले रिहाई के लिए आवेदन जमा करने के लिए अभियुक्त को स्वतंत्रता प्रदान की गई।

पैरोल-उच्च न्यायालय द्वारा (अनुच्छेद 226 के अंतर्गत अपने न्यायाधिकार के प्रयोग में) आजीवन कारावास के दोषी को पैरोल पर रिहा करने के लिए निर्देश – मना गया: अस्थायी रिहाई का निर्देश देने से पहले संविधानिक न्यायालय को यह राय बनानी चाहिए कि अनुरोध को अनुचित तरीके से अस्वीकार कर दिया गया है या जहां अंतर न्याय की आवश्यकता है-हालाँकि, इस तरह के अधिकार क्षेत्र का प्रयोग संयम से किया जाना चाहिए-वर्तमान मामले में, दोषी को बिना कानूनी सिद्धांत का सहारा लिए पैरोल पर रिहा करने का अचानक निर्देश जारी किया गया है।

न्यायिक अनुशासन-न्यायिक संयम-एक न्यायाधीश से कानूनी सिद्धांतों के अनुरूप कार्य करने के लिए अपेक्षा की जाती है - उसे संविधान और कानूनों के साथ अंतर्निहित रहना होगा-वह व्यक्तिगत धारणा या मत के आधार पर शक्ति ग्रहण नहीं कर सकता है।

अपील को अनुमति देते हुए, न्यायालय ने माना:

1. उच्च न्यायालय ने यह नहीं पाया है कि गुजरात राज्य द्वारा पारित आदेश आवश्यक तथ्यों के उचित विचार से रहित था या समानता के सिद्धांतों का उल्लंघन किया गया था। उच्च न्यायालय ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि आदेश कारणहीन है। विवादित आदेश में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि दोषी विघटनकारी गतिविधियों, आपराधिक साजिश, हथियारों, गोला-बारूद और विस्फोटकों की तस्करी में शामिल था और इसके अलावा वह विभिन्न अन्य गतिविधियों में भी शामिल रहा था। यह भी उल्लेख किया गया है कि कैदी के पास राष्ट्रीय सुरक्षा व्यवस्था को नुकसान पहुँचाने और अशांति पैदा करने के लिए व्यापक नेटवर्क था। उपरोक्त कारणों से माफी को अस्वीकार कर दिया गया था। ऐसी तथ्यात्मक स्थिति में, उच्च न्यायालय द्वारा निर्णय में की गई

टिप्पणियों के आधार पर मामले पर विचार करने के लिए व्यक्त किया गया दृष्टिकोण सही नहीं है।[पैरा 32] [837-बी-डी]

लक्ष्मण नास्कर बनाम पश्चिम बंगाल राज्य (2000) 7 एससीसी626 : 2000 (3) पूरक एस. सी. आर. 62-पर भरोसा किया गया।

2.1 संवैधानिक अदालत को, अस्थायी रिहाई निर्देश देने से पहले जहां अनुरोध को एक निर्दिष्ट कारण से और एक निर्दिष्ट अवधि के लिए पैरोल पर रिहा करने के लिए किया जाता है, एक राय बनानी चाहिए कि अनुरोध को अन्यायपूर्ण रूप से अस्वीकार कर दिया गया है या जहां अस्थायी रिलीज आदेश जारी करने के लिए न्याय की शर्त है। न्यायालय द्वारा अधिकारिता का प्रयोग संयम से किया जाना चाहिए और जब इसका प्रयोग किया जाता है, तब भी यह उचित है कि न्यायालय उन शर्तों और शर्तों को लिखना जिन पर पैरोल का लाभ उठाया जाना है इसे प्रशासनिक या जेल अधिकारियों पर छोड़ दे। [पैरा 33] [837-एफ-जी]

2.2 वर्तमान मामले में, पहले प्रतिवादी को तीन महीने की अवधि के लिए पैरोल पर रिहा करने का एक अचानक निर्देश जारी किया गया है। यह अच्छी तरह से तय है कि एक न्यायाधीश से मामले में कानूनी सिद्धांतों के अनुसार और सामंजस्य से कार्रवाई करने की अपेक्षा की जाती है। वह अपनी व्यक्तिगत धारणा या मत के आधार पर शक्ति ग्रहण नहीं कर सकता है। शक्ति का उपयोग करते समय उसे यह ध्यान रखना होगा कि "अनुशासन" और "प्रतिबंध" दो बुनियादी सुनहरे गुण हैं जिनके भीतर एक न्यायाधीश कार्य करता है। उसे संविधान और कानूनों से जुड़ा रहना होगा। [पैरा 34] [838-बी-सी]

सुनील फुलचंद शाह बनाम भारत संघ और अन्य (2000) 3 एससीसी 409: 2000 (1) एस. सी. आर. 945-अनुसरण किया गया।

3. यह तय करते समय कि द.प्र.स. की धारा 432 और 433 के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करने के लिए कौन सी सरकार उपयुक्त होगी।, पहला परीक्षण यह होना चाहिए कि क्या वह अपराध जिसके लिए सजा दी गई थी, उस कानून के तहत था जिसके संबंध में संघ की कार्यकारी शक्ति का विस्तार किया गया है। उदाहरण के लिए, यदि सजा टाडा अधिनियम के तहत दी गई थी, जैसा कि उक्त कानून केंद्र सरकार से संबंधित है, तो अकेले संघ की कार्यकारी शक्ति राज्य कार्यकारी शक्ति के बहिष्करण पर लागू होगी, जिस मामले में, राज्य की कार्यकारी शक्ति के अनुप्रयोग पर विचार करने का कोई सवाल ही नहीं होगा। उच्च न्यायालय ने राय दी है कि गुजरात राज्य उपयुक्त सरकार है। ऐसा इसलिए है क्योंकि यह इस सिद्धांत द्वारा निर्देशित किया गया है कि पहले प्रतिवादी को गुजरात राज्य में दोषी ठहराया गया और सजा सुनाई गई। [पैरा 29,31 और 32] [835-डी; 836-एफ-एचजे]

भारत संघ बनाम वी. श्रीहरण @ मुरुगन और अन्य 2015 (13) स्केल 165; मध्य प्रदेश राज्य बनाम अजीत सिंह और अन्य (1976) 3 एस. सी. सी. 616; हनुमंत दास बनाम विनय कुमार और अन्य। (1982) 2 एससीसी 177: 1982 (3) एससीआर 595; ए. पी. सरकार और अन्य बनाम एम. टी. खान (2004) 1 एस. सी. सी. 616: 2003 (6) पूरक एससीआर 490; जी. वी. रामानाय्या बनाम केंद्रीय जेल अधीक्षक, राजमुंदरी और अन्य (1974) 3 एससीसी 531: 1974 (1) एस. सी. आर. 852-पर निर्भर।

लाल सिंह बनाम गुजरात राज्य और अन्य (2001) 3 एससीसी 221: 2001 (1) एस. सी. आर. 111; हरियाणा राज्य बनाम महेन्द्र सिंह (2007) 13 एस. सी. सी. 606: 2007 (11) एससीआर 932; यू. टी. चंडीगढ़ बनाम चरणजीत कौर 1996 (7) एससीसी 492: 1996 (2) एससीआर 735; लक्ष्मण नस्कर बनाम पश्चिम बंगाल राज्य (2000) 7 एससीसी 626: 2000 (3) पूरक एससीआर 62; सांता सिंह बनाम पंजाब

राज्य (1976) 4 एससीसी 190: 1977 (1) एससीआर 229; कुलजीत सिंह बनाम दिल्ली के उपराज्यपाल 1982 (1) एससीसी 417: 1982 (3) एससीआर 58; केहर सिंह बनाम भारत संघ 1989 (1) एससीसी 204: 1988 (3) पूरक एस. सी. आर. 1102; मो. मुन्ना बनाम भारत संघ और अन्य (2005) 7 एस. सी. सी. 417 : 2005 (3) पूरक एस. सी. आर. 233; मारू राम बनाम संघ भारत और अन्य। 1981 (1) एस. सी. सी. 107; स्वर्ण सिंह बनाम यू. पी. राज्य और अन्य 1998 (4) एससीसी 75: 1998 (2) एससीआर 206 ; मध्य प्रदेश राज्य बनाम रतन सिंह और अन्य (1976) 3 एससीसी 470: 1976 (0) पूरक एससीआर 552; गोपाल विनायक गोडसे बनाम महाराष्ट्र राज्य (1961) 3 एससीआर 440 ; नायब सिंह पुत्र माखन सिंह बनाम पंजाब राज्य और अन्य। (1983) 2 एससीसी 454; के. एम. नानावती बनाम महाराष्ट्र राज्य 1962 सप्लीमेंट (1) एससीआर 567; किशोरी लाल बनाम सम्राट ए. आई. आर. 1945 पी. सी. 64; विकास चटर्जी बनाम भारत संघ और अन्य (2004) 7 एस. सी. सी. 634; सतपाल बनाम हरियाणा राज्य(2000) 5 एससीसी 170: 2000 (3) एस. सी. आर. 858; एपुरु सुधाकर और अन्य बनाम. सरकार. ए. पी. और अन्य। (2006) 8 एस. सी. सी. 161; स्वामी श्रद्धानंद (2) उर्फ मुरली मनोहर मिश्रा बनाम कर्नाटक राज्य (2008) 13 एससीसी 767 2008 (11) एस. सी. आर. 93; वी. श्रीहरण उर्फ मुरुगन बनाम भारत संघ और अन्य। (2014) 4 एससीसी 242-संदर्भित।

मामला कानून संदर्भ

2001 (1) एससीआर 111	संदर्भित किया गया	पैरा 3
2007 (11) एससीआर 932	संदर्भित किया गया	पैरा 5
1996 (2) एससीआर 735	संदर्भित किया गया	पैरा 6
2000 (3) पूरक एससीआर 62	पर भरोसा किया गया	पैरा 6
1977 (1) एससीआर 229	संदर्भित किया गया	पैरा 11

1982 (3) एससीआर 58	संदर्भित किया गया	पैरा 11
1988 (3) पूरक एससीआर 1102	संदर्भित किया गया	पैरा 11
2005 (3) पूरक एससीआर 233	संदर्भित किया गया	पैरा 11
1981 (1) एस. सी. सी. 107	संदर्भित किया गया	पैरा 12
1998 (2) एससीआर 206	संदर्भित किया गया	पैरा 12
1976 (0) पूरक एससीआर 552	संदर्भित किया गया	पैरा 16
(1961) 3 एससीआर 440	संदर्भित किया गया	पैरा 16
(1983) 2 एससीसी 454	संदर्भित किया गया	पैरा 17
1962 पूरक (1) एस. सी. आर. 567	संदर्भित किया गया	पैरा 21
एआईआर 1945 पीसी 64	संदर्भित किया गया	पैरा 21
(2004) 7 एस. सी. सी. 634	संदर्भित किया गया	पैरा 25
2000 (3) एससीआर 858	संदर्भित किया गया	पैरा 25
(2006) 8 एससीसी 161	संदर्भित किया गया	पैरा 26
2015 (13) स्केल 165	संदर्भित किया गया	पैरा 28
2008 (11) एससीआर 93	संदर्भित किया गया	पैरा 28
(2014) 4 एससीसी 242	संदर्भित किया गया	पैरा 28
(1976) 3 एससीसी 616	संदर्भित किया गया	पैरा 30
1982 (3) एससीआर 595	संदर्भित किया गया	पैरा 30
2003 (6) पूरक एस. सी. आर. 490	संदर्भित किया गया	पैरा 30
1974 (1) एससीआर 852	संदर्भित किया गया	पैरा 30
2000 (1) एससीआर 945	अनुसरण किया	पैरा 33

आपराधिक अपील न्यायनिर्णयः आपराधिक अपील सं 171/2006

2011 की सीआरएल डब्ल्यू. पी. नं. 1620 में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय चंडीगढ़ द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 23.08.2012 से।

के साथ

2012 की डब्ल्यू. पी. (सीआरएल।) सं. 181

वी. मधुकर, ए. ए. जी., डी. एन. रे, सुश्री हेमंतिका वाही, सुश्री जेसल वाही, सुश्री सुनीता शर्मा, सुश्री अन्विता काउशीश, कुलदीप सिंह, सुश्री नरेश बख्शी, अधिवक्ता उपस्थित दलों के लिए।

न्यायालय का निर्णय इनके द्वारा दिया गया था

दीपक मिश्रा, जे.

1. विशेष अनुमति द्वारा वर्तमान अपील, पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय चंडीगढ़ द्वारा 2011 की आपराधिक रिट याचिका संख्या 1620 में पारित 23 अगस्त, 2012 के फैसले और आदेश के खिलाफ निर्देशित की गई है, जिसके तहत उच्च न्यायालय ने रिट याचिका को स्वीकार करते हुए कहा था कि गुजरात सरकार द्वारा पहले प्रतिवादी को समय से पहले रिहा करने का लाभ देने से इनकार करने वाला 26.07.2011 दिनांकित आदेश अवैध है और राज्य सरकार को उसके मामले पर पुनर्विचार करने और विवादित आदेश में की गई चर्चाओं के आलोक में एक नया निर्णय लेने का निर्देश दिया गया है और उसे तीन महीने की अवधि के लिए पैरोल पर रिहा करने के लिए संबंधित जेल अधीक्षक की संतुष्टि के लिए 50,000 / का व्यक्तिगत बांड/सुरक्षा बांड जमा करने पर निर्देश दिया गया है।

2. वह तथ्य जिनका यहाँ उल्लेख करना आवश्यक है वो इस प्रकार हैं कि 20 अन्य लोगों सहित पहले प्रतिवादी पर टाडा प्रकरण सख्या 2, 7 1993 और 2, 1994 में मुकदमा चालाया गया। मिर्जापुर, अहमदाबाद में पहले प्रतिवादी और कुछ अन्य लोगों को आतंकवादी और विघटनकारी गतिविधियाँ (रोकथाम) अधिनियम, 1987 (संक्षेप में, "टाडा अधिनियम") की धारा 3 (3) के तहत दंडनीय अपराधों के लिए दोषी ठहराया

गया और प्रत्येक को आजीवन कारावास और 10,000 / अर्थ दंड की सजा सुनाई गई। - और चूक में 6 महीने के लिए आर. आई. भुगतना होगा; आई. पी. सी. की धारा 120-बी (1) के तहत प्रत्येक को 10 साल के लिए आर. आई. भुगतने और 5,000 / रुपये का जुर्माना देने की सजा सुनाई गई। - चूक में 3 महीने के लिए आर. आई. का सामना करना पड़ता है; टाडा अधिनियम की धारा 5 के तहत आजीवन कारावास की सजा और 10,000 / रुपये का जुर्माना देना पड़ता है - और चूक में 6 महीने के लिए आर. आई. का सामना करने के लिए; विस्फोटक पदार्थ अधिनियम की धारा 5 के तहत 5,000 / रुपये का जुर्माना देने के लिए - और चूक में 3 महीने के लिए आर. आई. से गुजरने; शस्त्र अधिनियम की धारा 25 (1-ए) के तहत 7 साल के लिए आर. आई. से गुजरने और 5,000 / रुपये का जुर्माना देने की सजा सुनाई गई- और, डिफ़ॉल्ट रूप से, 3 महीने के लिए आर. आई. से गुजरना होना। यह भी कहा जाए कि उन्हें आई. पी. सी. की धारा 120-बी के साथ टाडा अधिनियम की धारा 3 (3) के तहत दंडनीय अपराध के लिए भी दोषी ठहराया गया था लेकिन कोई अलग सजा नहीं दी गई। सभी सजाओं को एक साथ चलाने का निर्देश दिया गया था।

3. प्रथम प्रतिवादी ने 1997 की आपराधिक अपील सं. 219 दायर की और उक्त अपील की सुनवाई अन्य दोषियों द्वारा की गई अपीलों के साथ की गई। लाल सिंह बनाम में गुजरात राज्य और एक अन्य इस न्यायालय। ने साक्ष्य की विस्तार से जांच की और अंततः पहले प्रतिवादी द्वारा की गई अपील को खारिज कर दिया और विद्वत न्यायाधीश, नामित न्यायालय द्वारा अधिरोपित सजा की दोषसिद्धि की पुष्टि की।

4. इस न्यायालय के समक्ष आपराधिक अपील के लंबित रहने के दौरान, पहले प्रतिवादी ने केंद्रीय जेल, अहमदाबाद से केन्द्रीय कारागार, जालंधर को इस आधार पर स्थानांतरण की मांग की कि उसका परिवार पंजाब में है; उनके बूढ़े माता-पिता कई बीमारियों से पीड़ित थे; और आगे परिवार की आर्थिक स्थिति अनिश्चित थी। अभ्यावेदन

में बताए गए कारणों के अनुसार विचार करते हुए, राज्य सरकार ने दिनांक 11.11.1998 के आदेश के माध्यम से पहले प्रतिवादी को केंद्रीय जेल, अहमदाबाद से केंद्रीय जेल, जालंधर में स्थानांतरित करने के लिए सहमति व्यक्त की। गुजरात राज्य द्वारा एक शर्त निर्धारित की गई थी कि कड़ी सुरक्षा और उचित पुलिस अनुरक्षण व्यवस्था सुनिश्चित की जानी चाहिए।

5. 19.01.2004 को पहले प्रतिवादी ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (सी. आर. पी. सी.) की धारा 432 के तहत इस आधार पर समय से पहले रिहाई की मांग की कि वह जेल में 14 साल की वास्तविक सजा पूरी करेगा। समय से पहले रिहाई के लिए उनकी प्रार्थना पर गुजरात राज्य के सक्षम प्राधिकारी द्वारा विचार किया गया था जो 26.10.2006 के आदेश के अनुसार मामले के सभी पहलुओं पर विचार करते हुए उक्त आवेदन को खारिज कर दिया गया। उक्त आदेश पर पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के समक्ष 2007 की आपराधिक रिट याचिका संख्या 505 में हमला किया गया था, जिसने दिनांक 25.08.2008 के आदेश के माध्यम से गुजरात राज्य को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 433, कैदी हस्तांतरण अधिनियम की धारा 3 और हरियाणा राज्य बनाम महेंद्र सिंह में निर्णय की प्रयोज्यता पर विचार करते हुए समय से पहले रिहाई के लिए पहले प्रतिवादी के मामले पर पुनर्विचार करने के निर्देश के साथ रिट याचिका का निपटारा किया।

6. उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश को ध्यान में रखते हुए, राज्य सरकार ने समय से पहले रिहाई की उत्तरदाता की प्रार्थना पर 06.03.2009 कोविचार किया और उन सभी पहलुओं पर विचार करना जिन्हें उच्च न्यायालय के निर्देश के अनुसार अन्य सभी कारकों और यू. टी. चंडीगढ़ बनाम चरणजीत कौर और लक्ष्मण नास्कर बनाम पश्चिम बंगाल राज्य में निर्णयों के साथ ध्यान में रखा और अंततः आवेदन को खारिज कर दिया। अस्वीकृति की शिकायत ने पहले प्रतिवादी को पंजाब और हरियाणा उच्च

न्यायालय के समक्ष 2009 का आपराधिक आवेदन सं. 6515 चुनने के लिए मजबूर कर दिया। जिसे अंततः दिनांक 16.03.2009 के आदेश के माध्यम से वापस ले लिया गया था, जिसमें यह देखा गया था कि यह उक्त प्रतिवादी के लिए संबंधित प्राधिकारी से संपर्क करना खुला था । भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत 2009 के विशेष आपराधिक आवेदन संख्या 1274 में दिनांकित 06.03.2009 के आदेश को फिर से चुनौती दी गई थी जिसे उच्च न्यायालय ने खारिज कर दिया था।

7. शेष अपरिभाषित प्रथम प्रतिवादी ने इस आधार पर 20 । 0 की बंदी प्रत्यक्षीकरण स. 677 दायर की कि वह पहले से ही सजा की अपेक्षित अवधि का सामना कर चुका था और इसलिए, वह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 432,433 और 433 ए और नई पंजाब जेल नियमावली के पैरा 431 के अनुसार रिहा होने का हकदार था। एक शिकायत सामने रखी गई कि उनके प्रतिनिधित्व पर राज्य सरकार द्वारा विचार नहीं किया गया था। 20.04.2010 पर, उच्च न्यायालय ने मामले का निपटारा करते हुए राज्य सरकार को दो महीने की अवधि के भीतर एक बोलने का आदेश पारित करने का निर्देश दिया। यह कहा जा सकता है कि जब उच्च न्यायालय ने उक्त आदेश पारित किया था, तो उसने गुजरात राज्य को नोटिस जारी नहीं किया था। हालांकि, उच्च न्यायालय द्वारा जारी निर्देश को ध्यान में रखते हुए, सक्षम प्राधिकारी द्वारा इस मामले को पुनर्विचार के लिए उठाया गया और नियमावली के तहत आवश्यक उपयुक्त संबंधित से राय प्राप्त करने के बाद, राज्य सरकार ने दिनांक 30.12.20 । के आदेश के अनुसार पहले प्रतिवादी को समय से पहले रिहा करने से इनकार कर दिया। उक्त आदेश पर 2011 की रिट याचिका संख्या 158 में उच्च न्यायालय के समक्ष हमला किया गया था और उच्च न्यायालय ने दिनांक 25.05.2011 के निर्णय और आदेश के माध्यम से राज्य को 14 साल और तीन महीने और 21 साल से अधिक की वास्तविक सजा को ध्यान में रखते हुए समय से पहले रिहाई पर पुनर्विचार करने का निर्देश दिया था। उच्च

न्यायालय ने पहले प्रतिवादी को कुछ शर्तों के साथ पैरोल पर रिहा करने का निर्देश दिया था। उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के अनुसार, राज्य सरकार ने इस मामले को पुनर्विचार के लिए लिया और सीआरपीसी के वैधानिक प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, गुजरात राज्य को नियंत्रित करने वाली बॉम्बे जेल नियमावली के नियम संख्या 1448, सलाहकार बोर्ड की राय और मामलों की संख्या को ध्यान में रखते हुए, पहला प्रतिवादी वास्तव में शामिल था, अपराध की गंभीरता और प्रकृति और समाज पर इसके प्रभाव को ध्यान में रखते हुए, इसने 26.07.2011 दिनांकित आदेश के माध्यम से रिहाई के प्रस्ताव को खारिज कर दिया।

8. उपरोक्त आदेश से व्यथित होने के कारण, प्रथम प्रतिवादी ने भारत का संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का आह्वान किया। उच्च न्यायालय के समक्ष प्रत्यर्थी संख्या 1 की ओर से यह तर्क दिया गया कि पंजाब जेल नियमावली, 1996 के प्रावधान उस पर लागू होते हैं क्योंकि उसे कैदियों के हस्तांतरण अधिनियम, 1950 के अनुसार पंजाब राज्य में स्थानांतरित किया गया था और जैसा कि पंजाब जेल नियमावली के तहत सक्षम प्राधिकारी द्वारा की गई सिफारिश कि वह समय से पहले रिहाई का लाभ पाने का हकदार था, लेकिन गुजरात राज्य द्वारा इसे अस्वीकार कर दिया गया है और इसलिए, पूरी कार्रवाई मनमाना और अवैध थी। यह भी आग्रह किया गया कि बॉम्बे जेल नियमावली के अनुसार जो गुजरात राज्य में लागू है, वह भी समय से पहले रिहाई का हकदार था क्योंकि वह पहले ही 14 साल से अधिक समय से सजा से गुजर चुका था। यह भी तर्क दिया गया कि समय से पहले रिहाई के लिए प्रार्थना को स्वीकार करने से इनकार करना संविधान के अनुच्छेद 21 की अवधारणा के विपरीत था और इसलिए राज्य सरकार द्वारा पारित आदेश कानूनन अमान्य था।

9. प्रथम प्रत्यर्थी के रुख का गुजरात राज्य ने अन्य बातों के साथ-साथ यह तर्क देते हुए विरोध किया कि पंजाब जेल नियमावली के तहत सक्षम प्राधिकारी इसके लिए बाध्यकारी नहीं हैं जो समय से पहले रिहाई मामलों से संबंधित मामले को तय करने का एकमात्र प्राधिकारी है; कि पंजाब और हरियाणा के उच्च न्यायालय को बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट जारी करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था; कि राज्य द्वारा दर्शाई गई तथ्यात्मक पृष्ठभूमि समय से पहले रिहाई का मामला नहीं बनाती है और इसलिए, न्यायालय को उक्त पर अपने असाधारण अधिकार क्षेत्र का प्रयोग नहीं करना चाहिए। यह भी तर्क दिया गया कि पहले प्रतिवादी ने स्वीकार कर लिया है उच्च न्यायालय द्वारा अस्वीकार किए जाने के पहले के आदेशों को बाद की याचिकाओं में न्यायालय का दरवाजा खटखटाने से रोक दिया गया था।

10. विद्वान एकल न्यायाधीश ने विचार के लिए पाँच प्रश्न रखे। वे नीचे लिखे अनुसार हैं:

"i) याचिकाकर्ता की समयपूर्व रिहाई के मामले पर विचार करने के लिए कौन सी उपयुक्त सरकार सशक्त है?

ii) क्या एक उच्च न्यायालय द्वारा समय से पहले रिहाई के लिए पहले ही खारिज याचिका बाद की याचिकाएँ दायर करने के लिए बार और रोक के रूप में कार्य करती है?

iii) क्या उच्च न्यायालय जहाँ कैदी का स्थानांतरण किया गया है आपराधिक रिट याचिका पर विचार करने का अधिकार क्षेत्र रखता है?

(iv) क्या किसी दोषी की रिहाई न होना मौत की सजा से बदतर मंजूरी है, जिसके परिणामस्वरूप कार्यपालिका द्वारा जीवन की स्वतंत्रता और व्यक्तिगत जीवन पर अतिक्रमण होता है ?

v) क्या 26.07.2011 दिनांकित आदेश न्यायिक समीक्षा के अधीन है और मनमाना, सनकी और भारत का संविधान के अनुच्छेद 21 के प्रावधानों के खिलाफ है?"

11. पहले प्रश्न का उत्तर देते हुए, उच्च न्यायालय ने कहा कि यह गुजरात सरकार है जो प्रथम प्रत्यर्थी को समय से पहले रिहा करने के संबंध में आदेश पारित करने के लिए उपयुक्त सरकार है। प्रश्न संख्या 2 का उत्तर देते हुए, उच्च न्यायालय ने राय दी कि पहले की याचिकाओं को खारिज करना नई याचिका दायर करने के लिए बाधा के रूप में काम नहीं करता है और न ही जब कार्रवाई का नया कारण सामने आता है तो वे अवरोध के रूप में काम करते हैं। तीसरे पहलू के साथ निपटते हुए, उच्च न्यायालय ने राय दी कि संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत दायरे और दायरे को ध्यान में रखते हुए रिट याचिका पर विचार करने का अधिकार क्षेत्र उसके पास है। प्रश्न संख्या 4 पर विचार करते हुए, उच्च न्यायालय ने मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा, संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लेख किया, जो इस न्यायालय द्वारा सांता सिंह बनाम पंजाब राज्य, कुलजीत सिंह बनाम दिल्ली के उपराज्यपाल, केहर सिंह बनाम भारत संघ ', महेंद्र सिंह (ऊपर), मोहम्मद मुन्ना बनाम भारत संघ और अन्य और कुछ अन्य प्राधिकरण इस प्रकार में व्यक्त किये गये विचार यह अभिनिर्धारित करने के लिये आएः

> "उपरोक्त चर्चाओं, तथ्यों और मामलों की परिस्थितियों के आलोक में, गुजरात सरकार के वकील का कहना है कि आजीवन कारावास अर्थात कैदी का प्राकृतिक जीवन संविधान और अंतर्राष्ट्रीय संविधान और मानवाधिकार दस्तावेज के प्रावधानों के खिलाफ है और याचिकाकर्ताओं की समय से पहले रिहाई को अस्वीकार करने वाली शक्ति का मनमाना प्रयोग होगा। मुझे सन्देह नहीं है कि अनिश्चित आजीवन कारावास और एक दोषी-कैदी की गैर-रिहाई मौत की सजा की तुलना में बदतर

मंजूरी है, जिसके परिणामस्वरूप कार्यपालिका द्वारा जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर अतिक्रमण किया जाता है। एक बर्बर अपराध के लिए एक बर्बर दंड का सामना नहीं करना पड़ता है जो किसी व्यक्ति के मानसिक संतुलन को बिगाड़ सकता है जिसे यह अहसास हो सकता है कि वह कैद से कभी बाहर नहीं आयेगा। जिन अपराधों में आजीवन कारावास का प्रावधान है, उनके संबंध में कारावास की अवधि का निर्धारण एक आवश्यकता है और अपराध की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए निर्धारित सजा निर्धारित करने के लिए उचित संशोधन की आवश्यकता है। यह न्यायालय महसूस करता है कि आवश्यक उन मामलों में संशोधन अधिनियम को पूरा करना विधानमंडल का प्राथमिक दायित्व है जहां आजीवन कारावास का प्रावधान किया गया है ताकि दोषी/कैदी को यह पता चल सके कि उसे जेल में कितनी अवधि बितानी है अन्यथा, सुधारात्मक दृष्टिकोण,पुनर्वास और सुधारात्मक प्रणाली केवल एक व्यर्थ अभ्यास होगा। अन्यथा भी, एक कैदी को सलाखों के पीछे रखना राज्य के खजाने पर एक वित्तीय बोझ है और इस कारण से संशोधन करके कुछ निर्धारित सजा तय करना अनिवार्य है।"

12. पाँचवें मुद्दे की ओर इशारा करते हुए, उच्च न्यायालय ने केहर सिंह (ऊपर) में निर्णय, मारू राम बनाम में संविधान पीठ का निर्णय भारत संघ और अन्य और स्वर्ण सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य को संदर्भित किया और यह अभिनिर्धारित करने के लिए आया कि अनुच्छेद 72 या अनुच्छेद 161 के तहत राष्ट्रपति या राज्यपाल द्वारा पारित आदेश की न्यायिक समीक्षा की शक्ति सीमित आधारों पर उपलब्ध है। इसके बाद उच्च न्यायालय ने राय दी कि गुजरात राज्य ने प्रतिनिधित्व

पर विचार करते हुए समय से पहले रिहाई की मांग करने वाले पहले प्रतिवादी ने जिला मजिस्ट्रेट और वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, कपूरथला के साथ-साथ अधीक्षक अधिकतम सुरक्षा जेल, नाभा की रिपोर्टों को ध्यान में नहीं रखा था, जहां पहले प्रतिवादी की जेल चल रही थी और ऐसी रिपोर्टों को खारिज करने का कोई कारण नहीं बताया गया था। उच्च न्यायालय ने आगे कहा कि यह आदेश में दर्ज नहीं है कि कैसे गुजरात की सलाहकार समिति पहले प्रतिवादी की समय से पहले रिहाई के मामले की सिफारिश नहीं करने के लिए एक निष्कर्ष पर पहुंची है। इसके अलावा, यह देखा गया है कि हस्तांतरणकर्ता राज्य यानी पंजाब सरकार की सिफारिशों को अस्वीकार करने के लिए अदालत के समक्ष कोई सबूत या सामग्री नहीं रखी गई थी। इसके बाद, विद्वान एकल न्यायाधीश ने इस प्रकार कहाः

> " .....याचिकाकर्ता 20 साल से अधिक समय तक गुजरात के संबंधित जिले के जिला मजिस्ट्रेट और जिला पुलिस अधीक्षक के अधिकार क्षेत्र में कभी नहीं रहा था, तो उनकी रिपोर्ट हस्तांतरणकर्ता राज्य की रिपोर्ट से अधिक कैसे हो सकती है। याचिकाकर्ता स्थायी रूप से रहता है वहाँ याचिकाकर्ता को पंजाब राज्य की सिफारिशों अस्वीकार करने का कारण बताने की बाध्यता का अभाव का मतलब यह नहीं है कि अस्वीकृति का आदेश पारित करने के लिए वैध और प्रासंगिक कारण नहीं होना चाहिये। इसके अलावा, ऐसी कोई सामग्री कागजी पुस्तक पर नहीं रखी गई है और न ही अदालत को कोई रिकॉर्ड दिखाया गया है जो याचिकाकर्ता के दावे को अस्वीकार करने का आधार गठित करता हो। अदालत को कार्रवाई का कारण के बारे में अवगत कराने के लिए कारणों की आपूर्ति करने का दायित्व पूरी तरह से अलग है जब उसी को अदालत में चुनौती दी जाती है।

13. आखिरकार, उच्च न्यायालय ने उसमें की गई चर्चा के आलोक में पहले प्रतिवादी के प्रतिनिधित्व पर पुनर्विचार करने का निर्देश दिया और आगे उसे तीन महीने की अवधि के लिए पैरोल पर तुरंत रिहा करने के लिए आदेश दिया। विशेष अनुमति द्वारा इस अपील में उक्त आदेश हमला का विषय है।

14. हमने श्री डी. एन. रे और सुश्री हेमंतिका वाही, गुजरात राज्य की विद्वान वकील, सुश्री सुनीता शर्मा, प्रथम प्रतिवादी की विद्वान वकील और श्री वी. मधुखर, पंजाब राज्य के विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता को सुना है।

15. विशेष रूप से उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय की पृष्ठभूमि में विवाद की सराहना करने के लिए, आजीवन कारावास की सजा और कारावास की अवधारणा और सी. आर. पी. सी. के तहत परिकल्पित छूट से संबंधित कानून को फिर से स्थापित करना आवश्यक है।

16. मध्य प्रदेश राज्य बनाम रतन सिंह और अन्य में गोपाल विनायक गोडसे बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य निर्णयों और सी. आर. पी. सी. के प्रावधानों में निर्णय को स्वीकार करने के बाद फजल अली, न्यायाधिपति के माध्यम से बात करते हुए दो-न्यायाधीशों की पीठ ने राय दी है कि आजीवन कारावास की सजा 20 साल के अंत में स्वतः समाप्त नहीं होती है, जिसमें छूट भी शामिल है, क्योंकि विभिन्न जेल नियमावली के तहत या जेल अधिनियम के तहत प्रतिस्थापित प्रशासनिक नियम भारतीय दंड संहिता के वैधानिक प्रावधान प्रतिस्थापित नहीं किये जा सकते हैं। आजीवन कारावास की सजा का अर्थ है कैदी के पूरे जीवन के लिए एक सजा जब तक कि उपयुक्त सरकार दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401 के तहत सजा के पूरे या एक हिस्से को माफ करने के लिए अपने विवेक का प्रयोग करने का विकल्प नहीं चुनती है।

17. नायब सिंह पुत्र माखन सिंह बनाम पंजाब राज्य और अन्य में न्यायालय एक रिट याचिका पर विचार कर रहा था जिसके तहत संविधान के अनुच्छेद 32 में दोषी याचिकाकर्ता की जेल में निरंतर नजरबंदी को चुनौती दी गई है और बंदी प्रत्यक्षीकरण की प्रकृति में एक आदेश की मांग की गई है जिसमें दावा किया गया है कि उसने कानून के तहत निर्धारित अधिकतम कारावास की सजा काट ली है और इसलिए उसे रिहा किया जाना चाहिए। याचिकाकर्ता को आई. पी. सी. की धारा 307 के तहत दोषी ठहराया गया था और मौत की सजा सुनाई गई थी, लेकिन उसके द्वारा दायर दया याचिका पर, पंजाब के राज्यपाल ने उसकी मौत की सजा को आजीवन कारावास में बदल दिया था। 22 साल से अधिक की कठोर कारावास की सजा काटने के बाद, रिहाई के लिए एक याचिका दायर की गई थी। न्यायालय ने धारा 53 और 55 आई. पी. सी. और धारा 433 सी. आर. पी. सी, उच्च न्यायालय के विभिन्न निर्णयों और फिर आजीवन परिवहन की अवधारणा का उल्लेख किया, और अंततः यह अभिनिर्धारित किया कि यह कानून में अच्छी तरह से स्थापित स्थिति है कि आजीवन कारावास की सजा को आजीवन कठोर कारावास के बराबर माना जाना चाहिए और अंततः याचिकाकर्ता के तत्काल रिहाई के दावे को आई. पी. सी. की धारा 55 या सी. आर. पी. सी. की धारा 433 (बी) के तहत परिवर्तन के किसी भी आदेश के पारित होने के अभाव में अस्वीकार कर दिया गया था।

18. इस संबंध में, हम सार्थक रूप से लक्ष्मण नस्कर (ऊपर) में दो-न्यायाधीशों की पीठ के फैसले का उल्लेख कर सकते हैं। उक्त मामले में, पहले के फैसलों का उल्लेख करने के बाद, अदालत ने राय दी कि हालांकि प्रासंगिक नियमों के तहत आजीवन कारावास की सजा को 20 साल की निश्चित अवधि के बराबर माना जाता है, लेकिन यह ऐसे कैदी का कोई अक्षम्य अधिकार नहीं है। ऐसी विशेष शर्तों की समाप्ति पर बिना शर्त रिहा किया जाता है, जिसमें छूट भी शामिल है और यह केवल छूट पर

काम करने के उद्देश्य से है कि उक्त सजा को निश्चित अवधि के बराबर माना जाता है, न कि किसी अन्य उद्देश्य के लिए। न्यायालय ने आगे कहाः

> " ..... इस न्यायालय द्वारा समझाई गई इस कानूनी स्थिति को ध्यान में रखते हुए यह 1992 के पश्चिम बंगाल सुधारात्मक सेवा अधिनियम 32 की धारा 61 (1) पर याचिकाकर्ता के लिए विद्वान वकील द्वारा रखे गए निर्माण पर भी इसका स्पष्टीकरण याचिकाकर्ता की मदद नहीं कर सकता कि कुल की गणना के उद्देश्य से इस धारा के अधीन कारावास की अवधि-आजीवन कारावास को 20 साल के कारावास के बराबर माना जाएगा। इसलिए, केवल जेल में कारावास की सजा पूरी करने और संबंधित नियमों या कानून के तहत अर्जित छूट के आधार पर एक स्वचालित रिहाई का अधिकार नहीं होगा, लेकिन उपयुक्त सरकार को एक अलग आदेश सजा के अप्राप्त भाग को माफ करने का आदेश पारित करना होगा।"

19. यहाँ यह बताना आवश्यक है कि न्यायालय ने ऐसा कहते हुए कहा कि इस मुद्दे पर कि क्या सरकार द्वारा याचिकाकर्ता के मामले पर उचित विचार किया गया था। अदालत ने इस तथ्य पर ध्यान दिया कि इससे पहले अदालत ने सरकार को उन सभी आजीवन कैदियों की समय से पहले रिहाई के मामलों पर पुनर्विचार करने का निर्देश दिया था जिन्होंने अदालत का दरवाजा खटखटाया था। न्यायालय ने इस तथ्य पर ध्यान दिया कि सरकार ने कुछ सदस्यों वाली एक समीक्षा समिति का गठन किया था, और पहले जारी किए गए दिशानिर्देशों को सूचीबद्ध किया था, जिसके आधार पर एक दोषी को समय से पहले रिहा किया जा सकता है। उक्त दिशा-निर्देश इस प्रकार हैंः

"इस न्यायालय ने कुछ दिशानिर्देश भी जारी किए जिनके आधार पर एक दोषी को समय से पहले रिहा किया जा सकता है और वे निम्नानुसार हैंः

(i) क्या अपराध समाज को व्यापक रूप से प्रभावित किये बिना एक व्यक्तिगत कार्य है।

(ii) क्या भविष्य में अपराध करने की पुनरावृत्ति की कोई संभावना है।

(iii) क्या दोषी ने अपराध करने की अपनी क्षमता खो दी है।

(iv) क्या इस दोषी को कैद करने का कोई सार्थक उद्देश्य है।

(v) दोषी के परिवार की सामाजिक-आर्थिक स्थिति।"

20. न्यायालय ने समीक्षा समिति द्वारा दिए गए कारणों का विश्लेषण किया और राय दी कि सरकार द्वारा दिए गए कारण स्पष्ट रूप से अप्रासंगिक या सारहीन हैं और तदनुसार अदालत द्वारा जो कहा गया है, उसके आलोक में मामले को फिर से जांच के लिए सरकार को भेज दिया गया है।

21. मोहम्मद मुन्ना (उपरोक्त) में एक दो-न्यायाधीशों की पीठ एक रिट याचिका पर विचार कर रही थी जिसमें याचिकाकर्ताको इस आधार पर स्वतंत्र करने के लिये बंदी प्रत्यक्षीकरण एक रिट जारी करने के लिए अनुरोध किया गया था कि वह 21 साल से अधिक समय तक हिरासत में रहे। यह तर्क दिया गया कि आजीवन कारावास की अवधि 20 साल के कारावास के बराबर है और वह भी कानून के तहत स्वीकार्य आगे की छूट के अधीन है। दो-न्यायाधीशों की पीठ ने आई. पी. सी. के विभिन्न प्रावधानों, के. एम. नानावती बनाम महाराष्ट्र राज्य 'और किशोरी लाल बनाम सम्राट और गोपाल विनायक गोडसे (ऊपर) में निर्धारित कानून सहित इस क्षेत्र में पहले के फैसलों का उल्लेख किया और ने माना किः

> "कारागार नियम कारागार अधिनियम के तहत बनाए जाते हैं और कारागार अधिनियम अपने आप में उन्हें सजा को कम करने या माफ

करने का कोई अधिकार या शक्ति प्रदान नहीं करता है। यह केवल जेलों के विनियमन और उसमें बंद कैदियों की शर्तों का प्रावधान करता है"

अदालत ने आगे कहा कि याचिकाकर्ता का रिट याचिका में आग्रह किए गए किसी भी आधार पर रिहा कियाजाने का अधिकार नहीं था जब तक कि उचित सरकार द्वारा उनके पक्ष में माफी का कोई आदेश पारित नहीं किया गया था।

22. मारू राम (ऊपर) में धारा 433-ए सी.आर.पी.सी की संवैधानिक वैधता को चुनौती दी गई थी जिसे विधि सन्हिता में वर्ष में 1978 में लाया गया था। धारा 433-ए सी.आर.पी.सी ने सजा को कम करने या माफ करने पर प्रतिबंध लगाये थी। यह निर्धारित करती है किकि जहा किसी व्यक्ति को ऐसे अपराध के लिये दोषी ठहराये जाने पर आजावन कारावास की सजा दी जाती है जिसके लिये मौत कानून द्वारा एक सजा है, या जहां किसी व्यक्ति पर लगाई गई मौत की सजा को धारा 433 के तहत आजीवन कारावास में परिवर्तित कर दिया गया है, ऐसे व्यक्ति को तब तक जेल से रिहा नहीं किया जाएगा जब तक कि उसने कम से कम चौदह साल का कारावास नहीं बिताया हो। मारू राम (ऊपर) में बहुमत ने प्रावधान की संवैधानिक वैधता को बरकरार रखा। न्यायालय ने संविधान, अर्थात् अनुच्छेद 72 और 161 के तहत संवैधानिक प्राधिकरणों द्वारा छूट और शक्ति के प्रयोग की शक्ति के वैधानिक प्रयोग को अलग किया। उस संदर्भ में, न्यायालय ने कहा कि वह शक्ति जो संहिता के सृजन सेउत्पन्न है उसकी संघ और राज्यों के सर्वोच्च अधिकारियों में संविधान द्वारा निहित उच्च विशेषाधिकार के साथ नबराबरी नहीं की जा सकती, क्योंकि स्रोत अलग है और सार अलग है। अदालत ने कहा कि धारा 433-ए. सी. आर. पी. सी. को अप्रत्यक्ष रूप से संविधान के अनुच्छेद 72 और 161 का उल्लंघन करने के रूप में अमान्य नहीं किया जा सकता है। आगे विस्तार से बताते हुए, बहुमत ने निम्नलिखित प्रभाव की बात कीः

" ..... क्षमा, परिवर्तन और रिहाई (अनुच्छेद 72 और 161) की शक्ति जितनी व्यापक है, यह दंगा नहीं कर सकती; क्योंकि कोई भी कानूनी शक्ति नहीं घोड़े पर सवार जॉन गिलपिन की तरह अनियंत्रित रूप से नहीं चल सकती है लेकिन समझदारी से एक स्थिर मार्ग पर चलना चाहिए। यहाँ हम दूसरे संविधान मौलिकतापर आते हैं जो वकील की प्रस्तुतियों को रेखांकित करता है। यह है कि संवैधानिक शक्ति सहित सभी सार्वजनिक शक्तियों का कभी भी मनमाने ढंग से या दुर्भावनापूर्ण तरीके से उपयोग नहीं किया जाएगा और सामान्य रूप से निष्पक्ष और समान निष्पादन के लिए दिशा-निर्देश शक्ति के वैध खेल के गारंटर हैं।"

23. केहर सिंह (ऊपर) में संविधान पीठ ने राय दी कि माफी देने की शक्ति संवैधानिक योजना का एक हिस्सा है और भारतीय गणराज्य में ऐसा होना चाहिए। न्यायालय ने आगे कहा कि यह बहुत महत्वपूर्ण संवैधानिक जिम्मेदारी है, जिसका उपयोग संदर्भ द्वारा विचार किए गए विवेकाधिकार के अनुसार अवसर उत्पन्न होने पर किया जाना चाहिए। यह भी अभिनिर्धारित किया गया है कि क्षमा करने की शक्ति कार्यपालिका द्वारा राष्ट्रपति को दी गई सलाह पर निर्भर करती है, जिसे अनुच्छेद 74 (1) के प्रावधानों को के तहत सलाह के अनुसार कार्य करना चाहिए। अनुच्छेद 72 के तहत शक्ति के प्रयोग की न्यायसंगतता से निपटने के लिए, न्यायालय ने उचित विचार-विमर्श के बाद फैसला सुनाया कि अनुच्छेद 72 के तहत राष्ट्रपति की शक्ति पूरी तरह से न्यायिक क्षेत्र में आती है और अदालत द्वारा न्यायिक समीक्षा के माध्यम से इसकी जांच की जा सकती है। इस संदर्भ में, वृहद पीठ ने इस प्रकार निर्णय दियाः

"..... याचिका पर विचार करने का तरीका राष्ट्रपति के विवेक के अंतर्गत आता है, और यह उसे तय करना है कि वह उन सभी

सूचनाओं से खुद को कैसे बेहतर तरीके से परिचित करा सकता है जो इसके उचित और प्रभावी निपटारे के लिए आवश्यक हैं। राष्ट्रपति पहली बार में अपने समक्ष प्रस्तुत की गई पर्याप्त जानकारी पर विचार कर सकता है या वह उन मुद्दों के लिए आगे की सामग्री भेज सकता है जो वह उचित समझता है, और यदि वह समझता है कि यह याचिका पर विचार करने में उसकी सहायता करेगा, तो वह पक्षों को मौखिक सुनवाई दे सकता है। मामला पूरी तरह से उनके विवेक के दायरे में है। जहां तक राष्ट्रपति द्वारा याचिका पर लागू किए जाने वाले विचार की बात है, हमें और कुछ नहीं कहने की आवश्यकता है क्योंकि इस संबंध में इस न्यायालय द्वारा मारू राम (ऊपर) में कानून पहले ही निर्धारित किया जा चुका है।"

24. स्वर्ण सिंह (उपरोक्त) मामले में संविधान के अनुच्छेद 72 के तहत राष्ट्रपति या अनुच्छेद 161 के तहत राज्य के राज्यपाल द्वारा द्वारा पारित आदेश की गैर-न्यायसंगतता से निपटने के लिए तीन न्यायाधीशों की पीठ को बुलाया गया था। न्यायालय ने केहर सिंह (ऊपर) मामले में संविधान पीठ के फैसले का उल्लेख किया, जिसमें मारू राम (ऊपर) में बताए गए सिद्धांतों का पालन किया गया था और इन सिद्धांतों को रेखांकित किया गया था कि केहर सिंह (ऊपर) में एक बिंदु पर इस प्रभाव पर जोर दिया गया है कि शक्ति सबसे बड़े क्षण की होने के नाते, अपने आप में एक कानून नहीं हो सकती है, लेकिन यह संविधानवाद के सूक्ष्म सिद्धांतों द्वारा सूचित किया जाना चाहिए। न्यायालय ने मामले के तथ्यों को स्वीकार किया और इस प्रकार अभिनिर्धारित कियाः

"वर्तमान मामले में, जब राज्यपाल को ऊपर बताए गए भौतिक तथ्यों के साथ तैनात नहीं किया गया था, तो राज्यपाल स्पष्ट रूप से निष्पक्ष

और न्यायपूर्ण तरीके से शक्तियों का प्रयोग करने के अवसर से वंचित था। इसके विपरीत, आदेश अब मनमानी पर विवादित हो गया है। यदि राज्यपाल को उपरोक्त तथ्यों और सामग्रियों से अवगत कराया जाता तो राज्यपाल ने क्या आदेश दिया होता, इस पर हमें अभी विचार नहीं करना चाहिए क्योंकि न्यायालय तब उन आधारों के गुण-दोष में नहीं जा सकता है जो राज्यपाल को उक्त शक्ति का प्रयोग करते हुए निर्णय लेने के लिए राजी करते थे। इस प्रकार, जब इन कार्यवाहियों में आक्षेपित राज्यपाल का आदेश मारू राम मामले में निर्धारित सख्त मापदंडों के भीतर न्यायिक समीक्षा के अधीन है और केहर सिंह मामले में दोहराया जाता है, तो हम महसूस करते हैं कि राज्यपाल उन सामग्रियों के आलोक में दूध नाथ की याचिका पर पुनर्विचार करेंगे, जिन्हें उनको पहले जानने का मौका नहीं मिला।"

25. विकास चटर्जी बनाम भारत संघ और अन्य में संविधान पीठ ने संविधान के अनुच्छेद 72 के तहत पारित आदेश के संबंध में न्यायिक समीक्षा की शक्ति से निपतते हुए कहा गया कि शक्तियां बहुत सीमित हैं। मारू राम (ऊपर) पर भरोसा करते हुए, अदालत ने कहा कि यह केवल पूरी तरह से अप्रासंगिक आधारों या राष्ट्रपति के तर्कहीन, भेदभावपूर्ण या दुर्भावनापूर्ण निर्णय के आधार पर कोई विचार या विचार का मामला नहीं है जो न्यायिक समीक्षा के लिए आधार प्रदान कर सकता है। राज्यपाल की शक्तियों से निपटने के लिए, न्यायालय ने सतपाल बनाम हरियाणा राज्य में प्राधिकरण का उल्लेख किया और राय दी किः

"सतपाल बनाम हरियाणा राज्य (ऊपर) में इस न्यायालय के एक खंड पीठ के निर्णय में। इन आधारों को इस रूप में दोहराया गया हैः (i) राज्यपाल स्वयं सरकार द्वारा सलाह दिए बिना अनुच्छेद 161 के तहत

शक्ति का प्रयोग करता है; या (ii) राज्यपाल अपनी अधिकारिता का उल्लंघन करता है; या (iii) राज्यपाल बिना दिमाग शक्ति के इस्तेमाल के निर्णय पारित करता है या (iv) राज्यपाल का निर्णय किसी बाहरी विचार पर आधारित है; या (v) दुर्भावनापूर्ण। यह इन आधारों पर है कि न्यायालय अनुच्छेद 161 के तहत राज्यपाल के आदेश या संविधान के अनुच्छेद 72 के तहत राष्ट्रपति के आदेश के संबंध में न्यायिक समीक्षा की अपनी शक्ति का प्रयोग कर सकता है जैसा कि मामला हो सकता है।"

यह कहा जाए कि न्यायालय ने इस आधार पर रिट याचिका पर विचार करने से इनकार कर दिया कि यह मानने का कोई औचित्य नहीं है कि भारत के राष्ट्रपति ने सभी प्रासंगिक तथ्यों पर अपना दिमाग नहीं लगाया था और तदनुसार याचिका को खारिज कर दिया था।

26. इस मोड़ पर, एपुरू सुधाकर और एक अन्य बनाम ए. पी. सरकार. और अन्य में दो न्यायाधीशों की पीठ के फैसले का संदर्भ अनुकूल होगा। उक्त मामले में, दोषी को संविधान के अनुच्छेद 161 के तहत सजा की अनिश्चित अवधि की छूट दी गई थी। दोषी को लगभग सात साल के कारावास की अनिश्चित अवधि की छूट दी गई थी। मृतक के बेटे ने इसे चुनौती दी थी। न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप का प्रश्न विचार के लिए उठा। न्यायमूर्ति अरिजीत पसायत ने स्वर्ण सिंह (ऊपर) में अधिकार पर भरोसा रखा जिसमें मारू राम (ऊपर) और केहर सिंह (ऊपर) का उल्लेख किया गया था और इस विचार से निपटा गया और दोहराया गया कि यदि शक्ति का प्रयोग एकतरफा या दुर्भावनापूर्ण तरीके से किया जाता है या संस्थागतवाद पर सूक्ष्म सिद्धांतों की पूर्ण उपेक्षा में किया जाता है, तो आदेश की शक्ति का प्रयोग करते हुए इसके लिए व्यक्तिगत समीक्षा जांच की जा सकती है और न्यायिक हाथों को बढ़ाया जा सकता है।

27. सहमत राय में, एस. एच. कपाडिया, न्यायमूर्ति (उनके न्यायमूर्ति के रूप में) की राय इस प्रकार थीः

> "कार्यकारी माफी का प्रयोग विवेक का मामला है और फिर भी कुछ मानको के अधीन है। यह विशेषाधिकार का मामला नहीं है। यह आधिकारिक कर्तव्य के प्रदर्शन का मामला है। यह राष्ट्रपै या राज्यपाल मे, जैसा भी मामला हो, केवल दोषी के लाभ के लिये नहीं बल्कि उन लोगों के कल्याण के लिए जो कर्तव्य के प्रदर्शन पर जोर दे सकते हैं। इसलिए यह विवेकाधिकार केवल सार्वजनिक विचारों पर प्रयोग किया जाना चाहिए। राष्ट्रपति और राज्यपाल तथ्यों की पर्याप्तता और क्षमा और छूट देने की उपयुक्तता के एकमात्र न्यायाधीश हैं। हालाँकि, यह शक्ति संविधान में एक गणना की गई शक्ति है और इसकी सीमाएँ, यदि कोई हों, तो संविधान में ही पाई जानी चाहिए। इसलिए, अनन्य संज्ञान का सिद्धांत तब लागू नहीं होगा जब और यदि विवादित निर्णय संवैधानिक प्रावधान का अपमान करता है। यह मूल कार्य परीक्षण है जिसे क्षमा, छूट, छूट और परिवर्तन अनुदान देते समय लागू किया जाना है।"

और, फिर सेः

> "..... कानून का शासन सभी निर्णयों के मूल्यांकन का आधार है। कानून के शासन का सर्वोच्च गुण निष्पक्षता और कानूनी निश्चितता है। कानून के शासन में वैधता का सिद्धांत एक केंद्रीय योजना है। प्रत्येक विशेषाधिकार कानून के शासन के अधीन होना चाहिए। उस नियम से राजनीतिक लाभ के आधार पर समझौता नहीं किया जा

सकता है। इस तरह के विचारों के अनुसार चलना कानून के शासन के मौलिक सिद्धांत का विध्वंसक होगा और यह एक खतरनाक मिसाल स्थापित करने के बराबर होगा। कानून का शासन सिद्धांत में "कानून के अनुसार सरकार" की आवश्यकता शामिल है। "कानून के अनुसार सरकार" के लोकाचार के लिए विशेषाधिकार की आवश्यकता होती है इसका प्रयोग इस तरह से किया जाना चाहिए जो निष्पक्षता और निश्चितता के मूल सिद्धांत के अनुरूप हो। इसलिए, कार्यकारी क्षमादान की शक्ति न केवल दोषी के लाभ के लिए है, बल्कि ऐसी शक्ति का प्रयोग करते समय राष्ट्रपति या राज्यपाल को, जैसा भी मामला हो, अपने निर्णय के पीड़ितों का परिवार, समग्र रूप से समाज और यह भविष्य के लिए निर्धारित पूर्ववर्ती प्रभाव को ध्यान में रखना होगा। हम संवैधानिक मानदंड और कानून के शासन की अवधारणा से संबंधित उपरोक्त अभिव्यक्ति से सम्मानपूर्वक सहमत हैं।"

28. इस संदर्भ में, भारत संघ बनाम श्रीहरण @मुरुगन और अन्य का संदर्भ "काफी प्रतीत होता है। संविधान में बहुमत पीठ ने मारू राम (उपरोक्त) में प्राधिकरण का उल्लेख किया और कहा कि संविधान के अनुच्छेद 72 और 161 के तहत प्रदान की गई माफी की संवैधानिक शक्ति हमेशा अछूती रहेगी, हालांकि अनुच्छेद 72 और 161 के तहत संवैधानिक शक्ति की तुलना में माफी की वैधानिक शक्ति आदि समान दिखती है, फिर भी वे समान नहीं हैं। यह कहा जाए, न्यायालय बिना किसी छूट के 25 या 30 साल की अवधि तय करके आजीवन कारावास की सजा देने पर विचार कर रहा था। न्यायालय ने विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण करने के बाद कहा कि यह अनुज्ञेय है और स्वामी श्रद्धानंद उर्फ मुरली मनोहर मिश्रा बनाम कर्नाटक राज्य में निर्धारित कानून स्वीकृति के योग्य था। न्यायालय ने वी. श्रीहरण उर्फ मुरुगन बनाम भारत संघ और

अन्य मामले में निर्णय का उल्लेख किया "जिसमें मृत्युदंड को आजीवन कारावास में परिवर्तित करना स्पष्ट रूप से निर्धारित किया गया था कि इस तरह का परिवर्तन संविधान के साथ-साथ क़ानून के तहत छूट की शक्ति से स्वतंत्र था। प्रस्ताव का विस्तार करते हुए न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 21 के संदर्भ में माफी की शक्ति पर विचार करते हुए, बहुमत ने कहाः

> "..... यह सांविधिक या संवैधानिक प्राधिकारी द्वारा माफी की शक्ति के गलत प्रयोग या विकृत प्रयोग पर विचार करते समय भी उत्पन्न हो सकता है। निश्चित रूप से इस न्यायालय के लिए माफी के दावे के मामले पर संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत आदेश विचार करने की कोई गुंजाइश नहीं होती। दूसरे शब्दों में, इस न्यायालय द्वारा लगातार यह अभिनिर्धारित किया गया है कि जब पारित माफी के आदेश की समीक्षा करने का प्रश्न आता है जो स्पष्ट रूप से अवैध है या संवैधानिक उल्लंघन पर घोर अवैधता से भरा है या कार्यपालिका द्वारा किसी भी मामले में किसी भी औचित्य या शक्ति के रंगीन प्रयोग के बिना माफी के दावे को अस्वीकार करना, राज्य प्राधिकरण द्वारा ऐसे किसी भी कारणों को जोड़कर पारित किए गए ऐसे आदेशों की समीक्षा की गुंजाइश हो सकती है। इस तरह को छोड़कर, इस न्यायालय ने कई अवसरों पर मामलों में उल्लेख किया है, असाधारण परिस्थितियों में छूट की शक्ति हमेशा राज्य कार्यपालिका के पास निहित होती है और केवल यह न्यायालय छूट के किसी भी दावे पर विचार करने का निर्देश दे सकता है और कोई छूट नहीं दे सकता है और समय से पहले रिहाई का प्रावधान नहीं कर सकता है। यह बार-बार दोहराया

गया कि आवागमन की शक्ति विशेष रूप से उपयुक्त सरकार के पास है ..... "

29. ऐसा कहने के बाद न्यायालय ने कई निर्णयों का उल्लेख किया, संवैधानिक प्रावधानों और वैधानिक प्रावधानों के दायरे का विश्लेषण किया और इस प्रकार राय दीः

"इसलिए, यह माना जाना चाहिए कि इसका हर दायरा और दायरा है उपयुक्त सरकार के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 432 और 433 के तहत विचार करने और छूट देने के लिए, भले ही ऐसा विचार पहले राष्ट्रपति द्वारा अनुच्छेद 72 के तहत और राज्यपाल द्वारा अनुच्छेद 161 के तहत किया गया हो। जहाँ तक इस न्यायालय द्वारा संविधान के अनुच्छेद 32 के निहितार्थ का संबंध है, हम पहले ही यह मान चुके हैं कि धारा 432 और 433 के तहत वैधानिक रूप से शक्ति का प्रयोग उपयुक्त सरकार द्वारा किया जाना है, यह इस न्यायालय के लिए नहीं है कि वह उक्त शक्ति का प्रयोग करे और यह हमेशा उपयुक्त सरकार द्वारा निर्णय लेने के लिए छोड़ दिया जाता है भले ही कोई संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाए। ..... "

30. उक्त मामले में, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 432 (7) के संदर्भ में उपयुक्त सरकार के संबंध में प्रश्न उठा। बहुमत ने रतन सिंह (ऊपर), मध्य प्रदेश राज्य बनाम अजीत सिंह और अन्य हनुमंत दास बनामविनय कुमार और अन्य, ए. पी. सरकारऔर अन्य बनाम एम. टी. खान और जीवी। रामानाय्या बनाम अधीक्षक केंद्रीय जेल, राजमुंदरी और अन्य का उल्लेख किया और अंततः इस प्रकार निर्णय लियाः

"उपयुक्त सरकार की स्थिति चाहे संघ हो सरकार या राज्य सरकार धारा 432 (6) में निर्धारित दंड न्यायालय द्वारा पारित सजा आदेश

पर निर्भर करेगी और विशिष्ट कार्यकारी शक्ति की स्थिति में संसद द्वारा बनाए गए कानून के तहत या स्वयं संविधान के तहत केंद्र को प्रदान किया जाता है, फिर संसद के उक्त कानून या संविधान के प्रावधानों के तहत दोषसिद्धि और सजा की स्थिति में, भले ही राज्य का विधानमंडल उसी विषय पर कानून बनाने का भी अधिकार रखता है और कुल मिलाकर, संविधान के अनुच्छेद 73 (1) (ए) का प्रावधान में निहित प्रिस्क्रिप्शन को ध्यान में रखते हुए उपयुक्त सरकार संघ सरकार होगी। जी. वी. रामानाय्या (ऊपर) में निर्णय में बताए गए सिद्धांत को लागू किया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में, ऐसे मामले जो धारा 432 (7) (ए) के चार कोनों के भीतर आते हैं, विशिष्ट कार्यकारी शक्ति के आधार पर केंद्र, वही केंद्र सरकार को उपयुक्त सरकार के दर्जे के साथ प्रधानता प्रदान करेगा। धारा 432 (7) (ए) के तहत आने वाले मामलों को छोड़कर, अन्य सभी मामलों में जहां अपराधी को सजा सुनाई जाती है या सजा का आदेश संबंधित राज्य के अधिकार क्षेत्र में क्षेत्रीय सीमा के भीतर पारित किया जाता है, राज्य सरकार उपयुक्त सरकार होगी।"

31. जो भी कहा जाए, उपरोक्त भाग निष्कर्ष का एक हिस्सा है। विश्लेषण के दौरान, न्यायालय ने राय दी है कि जब संघ की कार्यकारी शक्ति के लिए राज्य की कार्यकारी शक्ति की बहिष्करण की प्रधानता का प्रश्न की बात आती है, जहां शक्ति सह-व्यापक है, पहली बार में, यह फिर से देखना होगा कि क्या आपराधिक न्यायालय द्वारा आदेशित सजा किसी ऐसे कानून के तहत पाई जाती है जिससे संघ की कार्यकारी शक्ति का विस्तार संबंधित है। उस संदर्भ में, न्यायालय ने इस प्रकार कहाः

" ..... इस संबंध में, हमारे सुविचारित विचार में, पहला परीक्षण यह होना चाहिए कि क्या वह अपराध जिसके लिए सजा दी गई थी एक कानून के तहत जिसके संबंध में संघ की कार्यकारी शक्ति का विस्तार होता है। उदाहरण के लिए, यदि सजा को टाडा अधिनियम के तहत लगाया गया था, जैसा कि उक्त कानून केंद्र सरकार से संबंधित है, तो अकेले संघ की कार्यकारी शक्ति राज्य कार्यकारी शक्ति के बहिष्करण पर लागू होगी, जिस स्थिति में, राज्य की कार्यकारी शक्ति के अनुप्रयोग पर विचार करने का कोई सवाल ही नहीं होगा।"

32. तत्काल मामले में, उच्च न्यायालय ने राय दी है कि गुजरात राज्य उपयुक्त सरकार है। ऐसा इसलिए है क्योंकि यह इस सिद्धांत के अनुसार निर्देशित किया गया है कि पहले प्रतिवादी को गुजरात राज्य में दोषी ठहराया गया और सजा सुनाई गई। जैसा कि हम चर्चा से पाते हैं, जी. वी. रामानाय्या (ऊपर)में प्राधिकरण का कोई संदर्भ नहीं है। इसके अलावा, यह मुद्दा उच्च न्यायालय के समक्ष नहीं उठाया गया था। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि उच्च न्यायालय ने मानवाधिकारों और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के कई पहलुओं का उल्लेख किया है, जैसा कि पहले संकेत दिया गया है और अगर हम खुद को ऐसा कहने की अनुमति देते हैं, तो पूरी चर्चा अमूर्तता के दायरे में है। न्यायालय ने यह नहीं पाया है कि गुजरात राज्य द्वारा पारित आदेश आवश्यक तथ्यों पर उचित विचार से रहित था या समानता के सिद्धांतों का उल्लंघन हुआ है। उच्च न्यायालय ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया है कि आदेश में कोई कारण नहीं है। विवादित आदेश में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि दोषी विघटनकारी गतिविधियों, आपराधिक साजिश, हथियारों, गोला-बारूद और विस्फोटकों की तस्करी में शामिल था और आगे वह विभिन्न अन्य गतिविधियों में भी शामिल रहा था। यह भी उल्लेख किया कि आम नाम के भेष में कैदी परिवहन के लिए वाहन खरीदता था और उसके आचरण

से पता चलता है कि उसके पास राष्ट्रीय सुरक्षा को नुकसान पहुँचाने और अशांति पैदा करने के लिए व्यापक नेटवर्क था। उपरोक्त कारणों से माफी को अस्वीकार कर दिया गया था। ऐसी तथ्य स्थिति में, उच्च न्यायालय द्वारा विचार करने के लिए व्यक्त किया गया दृष्टिकोण निर्णय में उसके द्वारा की गई टिप्पणियों के आधार पर मामला सही नहीं है।

33. जहाँ तक पैरोल देने के निर्देश का संबंध है, हम पाते हैं कि विद्वान न्यायाधीश ने तीन महीने के लिए तुरंत पैरोल देने का निर्देश दिया है। सुनील फुलचंद शाह बनाम भारत संघ और अन्य में संविधान पीठ ने विदेशी मुद्रा विनिमय और तस्करी गतिविधियों की रोकथाम अधिनियम, 1974 की धारा 12 (1) और धारा 12 (1-ए) के तहत अस्थायी रिहाई या पैरोल के अनुदान पर विचार करते हुए (कोफेपोसा अधिनियम) कहा था कि उक्त शक्ति का प्रयोग चरित्र में प्रशासनिक है लेकिन यह उच्च न्यायालय की संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत शक्ति को प्रभावित नहीं करता है। हालांकि, संवैधानिक अदालत को अस्थायी रिहाई का निर्देश देने से पहले, जहां एक निर्दिष्ट कारण से और एक निर्दिष्ट अवधि के लिए पैरोल पर रिहा करने का अनुरोध किया जाता है, यह राय बनानी चाहिए कि अनुरोध को अनुचित रूप से अस्वीकार कर दिया गया है या जहां इस तरह के अस्थायी रिलीज आदेश को जारी करने के लिए न्याय का हित आवश्यक है। न्यायालय ने आगे फैसला सुनाया कि न्यायालय द्वारा अधिकारिता का प्रयोग संयम से किया जाना चाहिए और जब इसका प्रयोग किया जाता है, तब भी यह उचित है कि न्यायालय को यह प्रशासनिक या जेल अधिकारियों पर छोड़ देना चाहिए कि वे उन शर्तों और शर्तों को निर्धारित करें जिन पर बंदी द्वारा पैरोल का लाभ उठाया जाना है।

34. हमने केवल पैरोल देने के संबंध में संविधान पीठ द्वारा व्यक्त किया गया विचार उजागर करने के लिए उपरोक्त प्राधिकरण का उल्लेख किया है। विवादित आदेश,

जैसा कि हम देखते हैं, शानदार रूप से मौन है और वास्तव में, पहले प्रतिवादी को तीन महीने की अवधि के लिए पैरोल पर रिहा करने के लिए एक अचानक निर्देश जारी किया गया है। कानून में यह अच्छी तरह से तय किया गया है कि एक न्यायाधीश से कानूनी सिद्धांतों के अनुरूप और अनुसार कार्य करने की अपेक्षा की जाती है। वह अपनी व्यक्तिगत धारणा या मत के आधार पर शक्ति ग्रहण नहीं कर सकता है। हो सकता है कि वह खुद को आशा की एक मोमबत्ती समझता हो, लेकिन सभी परिस्थितियों में उक्त सिद्धांत का अनुप्रयोग सही नहीं है क्योंकि इसमें समाज को प्रभावित करने की क्षमता हो सकती है। शक्ति का उपयोग करते समय उसे यह ध्यान रखना होगा कि "अनुशासन" और "प्रतिबंध" दो बुनियादी सुनहरे गुण हैं जिनके भीतर एक न्यायाधीश कार्य करता है। वह ऐसा व्यक्ति हो सकता है जो स्वतंत्रता का गीत गाना चाहता है और उसी त्याग करने वाली निष्क्रियता का महिमामंडन करना चाहता है, लेकिन उसकी गंभीर प्रतिज्ञा को संविधान और कानूनों के साथ अंतर्निहित रहना होगा। विचलन हो सकता है।

35. नतीजतन, अपील की अनुमति दी जाती है और और उच्च न्यायालय के विवादित आदेश और निर्णय को दरकिनार कर दिया जाता है और पहले प्रतिवादी को आठ सप्ताह की अवधि के भीतर भारत संघ के सक्षम प्राधिकरण के समक्ष अभ्यावेदन/आवेदन जमा करने की स्वतंत्रता दी जाती है और प्राधिकरण कानून और समय से पहले रिहाई के लिए बनाए गए दिशानिर्देशों के अनुसार यथासंभव शीघ्रता से इस पर विचार करेगा।

कल्पना के. त्रिपाठी

अपील की अनुमति दी गई।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक अधिवक्ता बृजेश कुमार द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण : यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और अधिकारिक उद्देश्यों के लिएए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।